विचार बिन्दु

मन की प्रसन्नता से समस्त मानसिक और शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं। –रामदास

असहमति से इतना डर क्यों?

किसी बात से सहमत होना बहुत आसान होता है, असहमत होना थोड़ा कठिन और असहमति को सह पाना शायद उससे भी अधिक कठिन। पिछले दिनों अभिनेत्री स्वरा भास्कर के एक बयान पर मचे विवाद ने एक बार फिर इस सवाल को हमारे सामने ला खड़ा किया है कि आखिर हम वैचारिक असहमति के साथ कैसा बर्ताव करते हैं।

31 अगस्त 2026 को दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'वुमन, लाइफ, फ्रीडम' विषय पर बोलते हुए स्वरा भास्कर ने संजय लीला भंसाली की फिल्मपद्मावतके जौहर दृश्य का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि फिल्म देखते हुए उनके मन में यह सवाल आया कि यदि वे स्वयं बलात्कार की पीड़िता होतीं तो इस दृश्य को देखकर उन्हें ऐसा महसूस हो सकता था मानो उन्होंने अपनी 'इज्जत' बचाने के लिए आत्महत्या न करके कोई कायरता की हो। उन्होंने सवाल किया–क्या हम बलात्कार से बची हुई स्त्रियों को यह संदेश देना चाहते हैं कि वे जीने की अधिकारी नहीं हैं? क्या बलात्कार किसी स्त्री के जीवन का अंत है?

इस कथन से असहमत होने के अनेक कारण हो सकते हैं। मसलन, कोई कह सकता है कि जौहर को आज की स्त्री के अनुभवों के चश्मे से नहीं, उसके ऐतिहासिक संदर्भ में देखा जाना चाहिए। कोई यह भी कह सकता है कि स्वरा ने उस दृश्य की व्याख्या करते हुए इतिहास और सिनेमा की जटिलताओं को बहुत सरल बना दिया। यह भी कहा जा सकता है कि उन्हें ऐसा बयान देना ही नहीं चाहिए था। इन सभी तर्कों पर बहस होनी चाहिए और खूब होनी चाहिए। लेकिन हुआ क्या?

उनके कथन के एक अंश को लेकर यह प्रचारित होने लगा कि उन्होंने रानी पद्मावती और जौहर करने वाली स्त्रियों को 'कायर' कहा है। स्वरा ने स्पष्टीकरण दिया कि उन्होंने ऐसा नहीं कहा था। 'कायर' शब्द का इस्तेमाल उन्होंने एक काल्पनिक स्थिति में अपने लिए किया था–यह बताते हुए कि यदि कोई बलात्कार–पीड़िता फिल्म के संदेश को इस तरह ग्रहण करे तो वह स्वयं को कायर महसूस कर सकती है। उनकीइस सफाई को लगभग अनसुना किया गया। इसीलिए उनको कहना पड़ा कि उनके कथन को गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया।

यहाँ ठहरकर हमें एक बहुत साधारण–सा सवाल पूछना चाहिए–किसी के विचार से असहमत होने के लिए क्या पहले उसे ठीक–ठीक समझना जरूरी नहीं है?और यदि वह विचार हमें गलत लगता है, तो उसका जवाब तर्क और प्रमाणों से देना चाहिए या उस व्यक्ति को गाली देकर?

मेरी असल चिंता स्वरा भास्कर के बयान को लेकर नहीं है। वे सही हैं या गलत, यह बहस का विषय है और रहना चाहिए। किसी भी विचार से सारे लोग कभी सहमत हो ही नहीं सकते। असहमति तो रहेगी ही। मेरी चिंता उस तेजी से बदलते सार्वजनिक वातावरण की है जिसमें विचार पर प्रतिक्रिया देने के बजाय व्यक्ति पर हमला करना आम और आसान होता जा रहा है। तर्क में मेहनत लगती है, गाली देने में नहीं। हम धीरे–धीरे एक ऐसे समाज की ओर बढ़ रहे हैं जहाँ हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तो चाहिए, लेकिन केवल अपनी पसंद की अभिव्यक्ति की। अपनी बात कहने का अधिकार हमें मौलिक और स्वाभाविक लगता है, दूसरे की बात सुनना–विशेषकर वह बात जो हमें नागवार गुजरती हो–असहनीय। शायद लोकतंत्र की असली परीक्षा यहीं होती है। जब कोई हमारी बात दोहराता है तब नहीं, बल्कि तब जब कोई हमारे विश्वास, हमारी मान्यताओं और हमारी भावनाओं के ठीक उलट कुछ कहता है। क्या हम उस समय भी उसे बोलने देंगे और उसके जवाब में अपने तर्क रखेंगे?क्योंकि असहमति लोकतंत्र की समस्या नहीं है। समस्या तो असहमति को सहन न कर पाना है।

मैं बहुत तकलीफ के साथ यह देख रहा हूँ कि हाल के समय में हमारे यहाँ असहमति को देशद्रोह या संस्कृति–विरोध की तरह परोसा जाने लगा है। हम किसी ऐसी बात का, जिससे हमारी सहमति नहीं होती, उत्तर तर्क और प्रमाण से देने के बजाय संबंधित व्यक्ति को ही गलत साबित करने लगते हैं। सोशल मीडिया पर तो कई बार ऐसा लगता है जैसे भीड़ ने सजा देने का अधिकार भी अपने हाथों में ले लिया है। मैं बहुत बार सोचता हूँ–अगर मैं किसी बात से सहमत नहीं हूँ और अपनी असहमति को गाली के रूप में व्यक्त करता हूँ, तो कहीं यह मेरी तर्कहीनता की परिणति तो नहीं है? अगर मेरे पास तर्क होता तो मैं गाली देता ही क्यों?

> **किसी समाज की ताकत इस बात में नहीं है कि वहाँ सब एक जैसा सोचते हैं। उसकी ताकत इस बात में है कि वहाँ अलग-अलग सोचने वाले लोग एक-दूसरे को सुन सकते हैं। इसलिए सवाल स्वरा भास्कर का नहीं है। सवाल जौहर का भी नहीं है। सवाल इससे कहीं बड़ा है-क्या हम असहमति के साथ रहना सीख सकते हैं?**

मुझे गलत समझ लिया जाए, उससे पहले मैं बहुत साफ शब्दों में यह कह देना चाहता हूँ कि मेरा यह लेख न तो स्वरा भास्कर के बयान के पक्ष में है, न उसके विरोध में। मेरा बहुत स्पष्ट मत है कि जिन्हें उनका बयान नहीं रुचा, उन्हें उसकी आलोचना करने, उसका खंडन करने और तस्वीर का दूसरा पहलू सामने रखने का पूरा हक है। हाँ, इतनी सावधानी जरूर बरती जानी चाहिए कि बयान को उसकी समठाता में देखा जाए और यदि बयान देने वाले ने कोई स्पष्टीकरण दिया है तो उसे भी मद्देनजर रखा जाए।

मान लीजिए, इन सब सावधानियों के बाद भी किसी को उनका बयान गलत लगता है। तो यह बात निस्संकोच कही जानी चाहिए। तर्क के साथ कही जानी चाहिए। यही तो अभिव्यक्ति की आजादी है। लेकिन इस आजादी का दुरुपयोग किसी भी सभ्य समाज में स्वीकार्य नहीं हो सकता। यहाँ दुरुपयोग से मेरा आशय अभद्र भाषा और व्यक्तिगत लांछनों से है। हम बहुत जल्दी 'तुम्हारी बात गलत है' के बजाय 'तुम घटिया हो' कहने लग जाते हैं। शायद ऐसा इसलिए होता है कि व्यक्ति को खारिज करना आसान होता है, विचार को खारिज करना कठिन होता है, और कहना अनावश्यक है कि अगर हमारे निशाने पर कोई स्त्री हो तो हम ऐसा करने में कुछ अधिक ही उत्साही हो जाते हैं। इसी तरह जिस विचारधारा को हम नापसंद करते हैं, उसे भी बहुत बार बिना औचित्य के अपनी कटु आलोचना का शिकार बना बैठते हैं।

यहाँ यह सवाल उठाना भी प्रासंगिक होगा कि आखिर अभिव्यक्ति की आजादी का मतलब क्या है? क्या यह आजादी असीमित और नियंत्रणहीन होती है? मेरे मन में बहुत सारी बातें आती हैं–क्या मुझे उनमें से हर बात को सार्वजनिक रूप से कह ही देना चाहिए? क्या अपनी बात कहते हुए मुझे दूसरों की भावनाओं की तनिक भी चिंता नहीं करनी चाहिए? जरूरी नहीं कि हर वह बात, जिस पर मैं विश्वास करता हूँ, सार्वजनिक रूप से कहूँ ही। मैं उसे अपने तक भी रख सकता हूँ। और यह बात किसी एक पक्ष पर ही लागू नहीं होती। जो मेरी बात से असहमत हैं, उनकी अभिव्यक्ति की आजादी भी असीमित नहीं हो सकती। उन्हें भी मर्यादा में रहकर अपनी बात कहनी चाहिए।

यहीं साहित्य की दुनिया की बात भी की जा सकती है। असल में साहित्य का तो एक आधार ही असहमति है। समर्थ साहित्यकार अपनी असहमति को अभिव्यक्त करता है, लेकिन वह अपने विरोधी को गाली नहीं देता है और न ही उसका चरित्र–हनन करता है। हिंदी साहित्य में इसके अनेक सुंदर उदाहरण मिलते हैं। भगवतीचरण वर्मा नेअपने उपन्यास 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते' में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के भीतर मौजूद विभिन्न विचारधाराओं को अपने ढंग से देखा और प्रस्तुत किया। रांगेय राघव उनकी इस दृष्टि से सहमत नहीं थे। उन्होंने अपनी वैचारिक असहमति को 'सीधा–सादा रास्ता' जैसे उपन्यास के माध्यम से सामने रखा। यानी एक लेखक ने दूसरे लेखक के विचार का उत्तर अपने विचार से दिया–गाली से नहीं, साहित्य से। इसी तरह प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानीपंच परमेश्वरके जवाब में रांगेय राघव ने इसी नाम से एक कहानी लिखी थी–यह भी साहित्य में रचनात्मक असहमति का एक दिलचस्प उदाहरण है। साहित्य की बड़ी दुनिया से ऐसे अनेक उदाहरण याद किए जा सकते हैं।

बात बहुत सीधी है–जिसके पास तर्क होते हैं, वह तर्क की बात करता है; जिसके पास तर्क नहीं होते, वह बहुत जल्दी व्यक्ति पर उतर आता है।

आज जौहर को लेकर जो विवाद चल रहा है और जिस रूप में चल रहा है, वह मुझे व्यथित भी करता है और चिंतित भी। मैं इसे इस रूप में देखता हूँ कि किसी भी समाज की परिपक्वता का परिचय इस बात से मिलता है कि वह अपने से भिन्न तरह से सोचने वालों के साथ कैसा बर्ताव करता है। इस कसौटी पर देखें तो हमारे समाज की बहुत अच्छी तस्वीर नहीं उभरती। हमें विचार करना होगा कि आखिर हम असहमति से इतना डरते क्यों हैं? क्यों असहमति को पचाने के मामले में हमारी पाचन–शक्ति इतनी कमजोर है? क्यों हमें शब्द के बजाय गाली का इस्तेमाल अधिक रुचिकर लगता है?

शायद इसलिए कि असहमति हमें केवल दूसरे की बात से नहीं, अपने भीतर की असुरक्षा से भी सामना कराती है। दूसरे का अलग सोचना हमारे विश्वास को चुनौती देता है और तब सबसे आसान रास्ता होता है–उसकी बात का जवाब देने के बजाय उसे ही चुप करा देना। लेकिन लोकतंत्र में असहमति को चुप कराना समाधान नहीं है। असहमति को सुनना, समझना और फिर उससे असहमत होना ही लोकतांत्रिक संस्कार है।

किसी समाज की ताकत इस बात में नहीं है कि वहाँ सब एक जैसा सोचते हैं। उसकी ताकत इस बात में है कि वहाँ अलग–अलग सोचने वाले लोग एक–दूसरे को सुन सकते हैं। इसलिए सवाल स्वरा भास्कर का नहीं है। सवाल जौहर का भी नहीं है। सवाल इससे कहीं बड़ा है–क्या हम असहमति के साथ रहना सीख सकते हैं?

और शायद इससे भी बड़ा सवाल यह है–क्या हम असहमति से डरना बंद कर सकते हैं?

–अतिथि संपादक,
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
(शिक्षाविद और साहित्यकार)

क्या राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बाद शिक्षण संस्थानों में भारतीय संस्कृति झलकती है?

प्रोफेसर अशोक कुमार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में एक बहुत सुंदर बात कही गई है–भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय संस्कृति को फिर से ज़िंदा करना। यह बात सुनने और पढ़ने में जितनी अच्छी लगती है, ज़मीनी हकीकत में उतनी ही उलझी हुई है। किसी भी शिक्षा नीति की कामयाबी इस बात से तय नहीं होती कि उसने किताबों में वेद, उपनिषद या प्राचीन इतिहास के कितने पन्ने जोड़े हैं। असली सवाल तो यह है कि क्या यह संस्कृति हमारे शिक्षण संस्थानों के दैनिक माहौल, शिक्षकों और छात्रों के व्यवहार और आपसी रिश्तों में उतर पा रही है?

भारतीय संस्कृति केवल जानकारी जुटाने का नाम नहीं है, यह तो संस्कारों और हमारे आचरण से तय होती है। अगर किसी शिक्षण संस्थान में प्राचीन श्लोक तो खूब रटवाए जा रहे हों, लेकिन वहाँ का माहौल राजनीति, गुटबाजी, आपसी जलन–तनातनी से भरा हो, तो क्या हम इसे संस्कृति कहेंगे? बिल्कुल नहीं। यह संस्कृति का पुनरुद्धार नहीं, बल्कि सिर्फ एक दिखावा है। संस्कृति तब ज़िंदा मानी जाती है जब वह हमारे स्वभाव में झलके, न कि केवल परीक्षा की कॉपियों और डिग्रियों में। आजकल कई जगहों पर ऐसा लगता है मानो संस्कृति का मतलब कुछ प्रतीकों तक सिमट गया है–कार्यक्रमों में पारंपरिक कपड़े पहन लेना, दीवारों पर अच्छे विचार लिखवा देना या सभा में खड़े होकर राष्ट्रगान गा लेना। राष्ट्रगान का सम्मान अपनी जगह बिल्कुल सही और ज़रूरी है, लेकिन अगर सभा खत्म होते ही कोई छात्र अपने शिक्षक से अभद्रता करने लगे, या कोई शिक्षक कक्षा में पढ़ाने के प्रति पूरी तरह बेपरवाह रहे, तो फिर उस औपचारिकता का क्या मोल रह जाता है?

संस्कृति किसी बाहरी रीति–रिवाज़ या भाषण का नाम नहीं है। यह इस बात में दिखती है कि हम एक–दूसरे से बात कैसे करते हैं, एक–दूसरे का कितना सम्मान करते हैं। जब तक हमारे शिक्षण संस्थानों का आम व्यवहार इन मूल्यों से नहीं जुड़ेगा, तब तक बड़े–बड़े नियम केवल फाइलों में ही बंद रह जाएंगे। हमारी परंपरा में गुरु और शिष्य का रिश्ता कभी डर, दबाव या सिर्फ हुक्म चलाने का नहीं रहा। उपनिषदों की शांति प्रार्थना हमें सिखाती है:–"सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै" (हम दोनों–गुरु और शिष्य–साथ मिलकर सुरक्षित रहें, साथ–साथ ज्ञान बाँटें और साथ मिलकर समर्थ बनें)।

गुरु का शिष्य के प्रति प्यार और आदर: गुरु केवल वह नहीं होता जो सिलेबस खत्म करवा दे; वह विद्यार्थी की जिज्ञासा, उसके आत्मसम्मान और उसकी उलझनों को समझने वाला एक सच्चा मार्गदर्शक होता है।

शिष्य का गुरु के प्रति आदर: विद्यार्थी का यह सम्मान किसी पद या डर की वजह से नहीं, बल्कि गुरु के ज्ञान, त्याग और सादगी को देखकर दिल से निकलता है। हमारी परंपरा में विद्या का सबसे पहला फल ही विनम्रता (विद्या ददाति विनयं) माना गया है। लेकिन आज शिक्षा के अंधाधुंध बाज़ारीकरण ने इस रिश्ते को बिगाड़ कर रख दिया है। आज यह पवित्र संबंध ग्राहक और सर्विस प्रोवाइडर जैसा बन गया है। भारी–भरकम फीस चुकाने के बाद छात्र के मन में ज्ञान पाने की विनम्रता के बजाय यह अहसास घर कर जाता है कि "मैंने पैसे दिए हैं, तो मुझे सेवा चाहिए"। जब शिक्षक को सिर्फ एक कर्मचारी और छात्र को कस्टमर मान लिया जाएगा, तो उस रिश्ते में आदर और अपनापन कहाँ से बचेगा? ग्राहक कभी दुकानदार का सम्मान नहीं करता, वह तो बस अपनी शर्तों पर काम चाहता है। प्राचीन भारत में अध्ययन को महज़ नौकरी पाने का ज़रिया नहीं, बल्कि स्वाध्याय और एक तरह की तपस्या माना गया था। किसी संस्थान में कितनी संस्कृति है, यह वहाँ के अकादमिक माहौल से पता चलता है:–

क्या वहाँ की लाइब्रेरी में छात्र और शिक्षक सचमुच लगन से बैठकर पढ़ रहे हैं? क्या शिक्षक क्लास में पूरी तैयारी और दिल से पढ़ाने आते हैं? क्या विद्यार्थी सच में कुछ सीखने की ललक से कक्षा में बैठते हैं, या सिर्फ अटेंडेंस और किसी तरह डिग्री हासिल करने की होड़ में हैं? अगर परिसर में कक्षाएं समय पर न लगें, रिसर्च में नकल हो, परीक्षाओं में पर्चियां चलें और प्रशासन में घपलेबाज़ी हो, तो दीवारों पर चाहे जितने वेद–मंत्र लिखवा लें, वहाँ भारतीय संस्कृति का नामोनिशान नहीं होता। आज कई शिक्षण संस्थान विद्या के केंद्र कम और राजनीति व खींचतान के अखाड़े ज़्यादा नज़र आते हैं।

क्लास में शिक्षकों का डर : आज हालत यह है कि कई शिक्षक क्लास में किसी छात्र को डांटने या समझाने से भी कतराते हैं। उन्हें डर रहता है कि कहीं छात्र कोई झूठा आरोप न लगा दे, सोशल मीडिया पर बदनाम न कर दे, या बाहर से राजनीतिक लड़कों को बुलाकर धमकी न दिलवा दे। शिक्षक अब चुपचाप अपना लेक्चर देकर सुरक्षित निकल जाना बेहतर समझते हैं। गलत व्यवहार को देखकर भी अनदेखा करना आज शिक्षक की लाचारी बन चुका है।

छात्र राजनीति का गिरता स्तर: छात्र राजनीति कभी वैचारिक समझ और समाज सेवा का मंच हुआ करती थी, लेकिन आज वह सिर्फ बाहुबल, पैसे और बड़े नेताओं की जी–हज़ूरी बनकर रह गई है। कुलपतियों का घेराव करना, तोड़–फोड़ करना और अपशब्दों का इस्तेमाल करना कई युवाओं के लिए नेता बनने की सीढ़ी बन गया है। दुखद यह भी है कि कई शिक्षक भी अपनी गुटबाजी और राजनीति में उलझे रहते हैं। जब शिक्षक ही आपस में झगड़ेंगे और धरनों पर बैठेंगे, तो वे छात्रों को क्या संस्कार सिखाएंगे?

कमरों में बंद प्रशासन और संवाद की कमी: विश्वविद्यालयों के बड़े अधिकारी (जैसे वीसी या रजिस्ट्रार) छात्रों के लिए बिल्कुल अनचाहे और दूर के अफ़सर जैसे बन जाते हैं। वे बंद कमरों में रहते हैं और हॉस्टल, मेस, लाइब्रेरी या समय पर रिज़ल्ट आने जैसी ज़मीनी समस्याओं को सुनने का उनके पास समय नहीं होता। जब बातचीत के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं, तभी छात्रों का गुस्सा सड़कों पर तोड़–फोड़ और घेराव के रूप में फूटता है।

अधिकारों की याद, लेकिन कर्तव्यों की भूल: भारतीय संस्कृति में अधिकार हमेशा कर्तव्य और धर्म से जुड़े रहे हैं। आधुनिक शिक्षा ने हमें अपनी आज़ादी और हक मांगना तो सिखा दिया, लेकिन उसके साथ जो ज़िम्मेदारी और अनुशासन होना चाहिए था, वह हम भूल गए। अनुशासन को पाबंदी और मर्यादा को गुलामी समझा जाने लगा है।

अगर हमें सचमुच अपने परिसरों को बदलना है, तो सिर्फ बातें बनाने से काम नहीं चलेगा। हमें दोनों तरफ से कड़े और सच्चे कदम उठाने होंगे:– विश्वविद्यालयों को राजनीतिक दलों की नर्सरी न बनने दें। छात्र चुनाव सिर्फ कॉलेज के असल मुद्दों (जैसे लाइब्रेरी, हॉस्टल, खेलकूद और पढ़ाई) तक ही सीमित रहने चाहिए। लिंगदोह समिति की सिफारिशों को कड़ाई से लागू किया जाए। जो छात्र हिंसा, धमकी या तोड़–फोड़ में शामिल हों, उन्हें तुरंत कॉलेज से निकाला जाए। हर महीने कॉलेज और यूनिवर्सिटी के आला अधिकारियों को छात्रों के साथ आमने–सामने बैठकर ओपन हाउस (खुली चर्चा) करनी चाहिए। जब बच्चों की बात प्यार से सुनी जाएगी, तो उन्हें अपनी मांगों के लिए धरने देने या रास्ते जाम करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। जो शिक्षक क्लास में अनुशासन बनाए रखना चाहते हैं, प्रशासन को पूरी मजबूती से उनके पीछे खड़ा होना चाहिए ताकि वे निडर होकर पढ़ा सकें। साथ ही, शिक्षकों की नियुक्तियाँ किसी नेता की सिफारिश पर नहीं, बल्कि उनकी योग्यता और आचरण के आधार पर होनी चाहिए। अपनी बात रखने का हक सबको है, लेकिन गाली–गलौज, मारपीट या सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुँचाने पर बिल्कुल ढिलाई नहीं होनी चाहिए। बच्चे हैं, जाने दो की सोच ने ही इस उद्दंडता को बढ़ाया है।

पढ़ाई सिर्फ लेक्चर देने तक सीमित न रहे। 15–20 छात्रों पर एक शिक्षक को संरक्षक (मेंटॉर) बनाया जाए, जो पढ़ाई के साथ–साथ उनके तनाव, करियर की चिंता और निजी उलझनों को भी एक बड़े की तरह समझकर दूर कर सके। संस्कृति कोई ऐसा सरकारी आदेश नहीं है जिसे किसी सर्कुलर या नोटिस बोर्ड पर चिपकाकर लागू किया जा सके। शिक्षा नीति हमें एक अच्छा रास्ता और साधन दे सकती है, लेकिन उस पर चलना तो हमें खुद ही होगा। संस्कृति किसी कानून से नहीं, बल्कि अच्छे माहौल से रिस–रिसकर हमारे भीतर उतरती है।

यह संस्कृति क्लास में शिक्षक की मीठी और ज्ञानभरी आवाज़ में, स्टाफ रूम के आपसी भाईचारे में, और प्रशासन के संवेदनशील फैसलों में सांस लेती है। जब तक हमारे स्कूल और कॉलेज आपस में मिल–जुलकर सीखने, मर्यादा और निडरता के सच्चे केंद्र नहीं बनेंगे, तब तक सिर्फ किताबों में वेदों के नाम लिख देने से कुछ नहीं बदलेगा। बदलाव की शुरुआत तभी होगी जब शिक्षक अपने आत्मसम्मान और पढ़ाने की निष्ठा को फिर से पहचानेंगे, छात्र अधिकारों के साथ–साथ अपने कर्तव्यों का आदर करेंगे, और दोनों मिलकर सह नाववतु की भावना को अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में उतारेंगे।

–प्रोफेसर अशोक कुमार,
पूर्व कुलपति, कानपुर एवं गोरखपुर विश्वविद्यालय

बलिदान, इतिहास और चेतना : चित्तौड़ के जौहर से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन तक

सूर्यप्रताप सिंह राजावत

स्वरा भास्कर की हालिया टिप्पणियाँ, जिनमें चित्तौड़ के जौहर को कायरता का कृत्य बताया गया है, घृणा–भाषण अथवा मानहानि, या दोनों की श्रेणी में आती हैं। अत: यह विषय न्यायिक परीक्षण की अपेक्षा करता है। देश का कानून स्पष्ट है। उक्त टिप्पणियाँ भारतीय न्याय संहिता के अंतर्गत अपराध गठित करने वाले आवश्यक तत्वों को पूरा करती हैं। मानहानिकारक एवं निंदनीय टिप्पणियों के संबंध में राजपूत सभा के अध्यक्ष राम सिंह चांदलई ने स्वरा भास्कर को पत्र लिखा है। बताया जाता है कि वह सोशल मीडिया पर ध्यान आकर्षित करने के लिए भारत–विरोधी टिप्पणियाँ करने के लिए जानी जाती हैं।

अश्विनी उपाध्याय प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार, इस घृणा–भाषण के संबंध में अभी तक कोई प्राथमिकी दर्ज होने की सूचना नहीं है। कुछ समय पूर्व, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) के नेता उदयनिधि स्टालिन ने सनातन धर्म के विरुद्ध टिप्पणियाँ की थीं और आज तक, मद्रास उच्च न्यायालय की टिप्पणियों के बावजूद, उनके विरुद्ध कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है। यह प्रवृत्ति एक ऐसे पैटर्न, एक षड्यंत्र और एक ऐसी योजना को प्रदर्शित करती है, जिसका उद्देश्य इस प्राचीन भूमि–भारत–के आदर्शों, मूल्यों और संस्कृति को अपमानित करना है।

भारत में जन्म लेना, भारतीय परिवार में जन्म लेना और भारत में शिक्षित होना मात्र इस बात के लिए पर्याप्त नहीं है कि कोई व्यक्ति भारत की आत्मा को जाने और उसकी सराहना करे। कुछ लोग ऐसे व्यक्तित्व और आचरण को इस तथ्य से जोड़ सकते हैं कि उनका समस्त आचरण वित्तपोषित या प्रायोजित है। लेकिन वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या ऐसे आचरण को दंडित हुए बिना जाने दिया जा सकता है? भारत का संविधान सभी नागरिकों को वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। लेकिन यह स्वतंत्रता निरपेक्ष नहीं है। यह सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता तथा मानहानि सहित संविधान द्वारा निर्धारित उचित प्रतिबंधों के अधीन है। राज्य तथा उन संस्थाओं की ओर से कोई ऐसी चूक नहीं होनी चाहिए, जो राजपूतों के बलिदान के गौरवशाली इतिहास का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिससे यह धारणा उत्पन्न हो कि उनके द्वारा कही गई कोई भी बात न तो घृणा–भाषण थी और न ही मानहानि। अत: भारतीय मूल्यों के प्रति बार–बार किए जाने वाले इस प्रकार के अपमान के इस विशेष प्रकरण को गंभीरता से लिया जाना चाहिए, विशेष रूप से इसलिए कि इसका भविष्य में निवारक प्रभाव होना आवश्यक है।

इतिहास का अध्ययन हमें प्रतिक्रिया के तीन चरण प्रदान करता है। पहला, विरोध; दूसरा, असहयोग, अर्थात शांतिपूर्ण साधनों के माध्यम से अपनी बात रखना; और तीसरा, आरोपित व्यक्ति का बहिष्कार। लेकिन यदि ये उपाय भी गलत आचरण को रोकने में सफल नहीं होते, तो आत्मरक्षा में कानून द्वारा अनुमत उपायों का सहारा लिया जा सकता है; क्योंकि इसके बाद प्रश्न केवल आलोचना को स्वीकार करने का नहीं रह जाता, बल्कि राजपूताना के महान एवं उदात्त जीवन–मूल्यों की मानहानि और उनकी हत्या को रोकने का हो जाता है।

स्वरा की टिप्पणियों के लिए उनके प्रति दया दिखाने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि न तो वे भोली हैं और न ही उन टिप्पणियों से अनभिज्ञ हैं, जो उनके नाम से संबंधित हैं। जानबूझकर और इच्छापूर्वक किया गया कदाचार दया का नहीं, बल्कि निवारक प्रतिक्रिया का विषय है।

सहिष्णुता वीरों का गुण है, लेकिन एक सीमा के बाद सहिष्णुता भीतर स्थित दिव्यता का अपमान बन जाती है। जौहर के रूप में किया गया बलिदान उस भूमि की संस्कृति का चरम स्वरूप है, जहाँ शत्रु को केवल पराजय का सामना करना पड़ा। जीवन के ऐसे उच्च आदर्शों को समझना उन लोगों के लिए कठिन है, जो चेतना के निम्न स्तर पर जीवन जीते हैं और जिनके लिए जीवन के केवल पशुवत पक्षों का महिमामंडन ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्रतीत होता है।लेकिन यह तर्क भी स्वरा के बचाव का आधार नहीं बन सकता। चाहे ऐसा हो, लेकिन किसी भी स्थिति में उनसे केवल अपने जीवन के आदर्शों या अपनी चेतना को ऊँचा उठाने की अपेक्षा नहीं की जा रही है। लेकिन हाँ, उनसे यह अपेक्षा अवश्य है कि वे लक्ष्मण रेखा को पार न करें, क्योंकि राजपूताना के आदर्शों में विश्वास रखने वाले लोग आज भी जीवित हैं। और जब भी भारत के मूल्यों, संस्कृति, संप्रभुता और सीमाओं की रक्षा का आ ान होगा, तब समय के पास घटनाक्रम का साक्षी बने रहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा। निस्संदेह, उनकी टिप्पणियाँ उनके अंतर्मन की चेतना का प्रतिबिंब हैं। लेकिन अगला प्रश्न यह है कि क्या ऐसी टिप्पणियाँ उन लोगों द्वारा अनदेखी कर दी जाएँगी, जो आत्मबलिदान को सर्वोच्च सम्मान मानते हैं?

जौहर को कायरता या जीवन से पलायन का प्रतीक नहीं, जैसा कि स्वरा का मानना है, बल्कि महिला सशक्तिकरण के एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ महिलाओं की सहमति बल, अनुचित प्रभाव अथवा कपट से प्राप्त नहीं की जा सकती थी। यह केवल रानी के उच्च मूल्यों का ही नहीं, बल्कि राज्य की सभी महिलाओं के उच्च मूल्यों का भी प्रतीक है–एक ऐसा साझा मूल्य, जो केवल कुलीन वर्ग तक सीमित नहीं था, बल्कि राज्य में रहने वाली समस्त प्रजा तक विस्तृत था।

ऐसे संस्कार को समझना और उसकी सराहना करना उन महिलाओं के लिए सरल नहीं है, जैसे स्वरा, जो इस विचारधारा के अनुसार केवल शरीर की उन आवश्यकताओं के महिमामंडन को जानती हैं, जो भोजन, निद्रा, भय और मैथुन से आगे नहीं जातीं। आज समय की यह गंभीर आवश्यकता है कि अज्ञानता को आनंद या सौभाग्य मानकर अनदेखा नहीं किया जा सकता, बल्कि उसके अनुरूप आनुपातिक दंड पर विचार किया जाना चाहिए। वे क्षमा माँगती हैं या नहीं, यह अलग प्रश्न है। वास्तविक प्रश्न यह है कि भारत कब तक ऐसे लोगों द्वारा किए जाने वाले तिरस्कारपूर्ण, निंदनीय व अपमानजनक व्यवहार को सहन करेगा, जो भारतीय नागरिक तो कहे जाते हैं, लेकिन जिनका आचरण और चिंतन इसके विपरीत है? यह केवल राजपूतों को प्रभावित करने वाली समस्या नहीं है। विश्व इतिहास के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि चित्तौड़ का शौर्य, साहस और बलिदान केवल भारत को ही नहीं, बल्कि भारत की सीमाओं के बाहर के लोगों को भी प्रेरित करता है।

इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन यह भी सिखाता है कि समान लक्ष्य रखने वाले व्यक्तियों की रणनीतियाँ अलग–अलग हो सकती हैं। मध्यकालीन भारत में महाराणा प्रताप और आमेर के राजा मानसिंह की राजनीतिक रणनीतियाँ समान नहीं थीं। एक ने प्रत्यक्ष संघर्ष का मार्ग चुना, तो दूसरे ने तत्कालीन साम्राज्य के साथ राजनीतिक संबंधों के भीतर अपनी भूमिका निर्धारित की। ऐसी ऐतिहासिक भूमिकाओं का मूल्यांकन उस समय की परिस्थितियों और उपलब्ध विकल्पों को समझकर किया जाना चाहिए।यही बात भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर भी लागू होती है। कांग्रेस में नरम दल और गरम दल के तरीकों में बड़ा अंतर था, लेकिन दोनों धाराएँ विदेशी शासन से भारतीय हितों की रक्षा और अंतत: स्वशासन की दिशा में आगे बढ़ रही थीं। किसी को क्रमिक राजनीतिक सुधार स्वीकार्य थे, जबकि दूसरे तत्काल और पूर्ण स्वतंत्रता की माँग की ओर बढ़ रहे थे। श्रीअरविन्द ने बंग–भंग आंदोलन के समय स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज को राष्ट्रीय आंदोलन के महत्वपूर्ण साधनों के रूप में प्रस्तुत किया। महात्मा गांधी ने हिन्द स्वराजमें स्वराज की अपनी विशिष्ट अवधारणा रखी। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव ने स्वतंत्रता के अपने आदर्श के लिए फाँसी स्वीकार की। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारत से बाहर जाकर आजाद हिन्द फौज के माध्यम से ब्रिटिश शासन को चुनौती देने का मार्ग चुना।मार्ग अलग थे, लेकिन भारत की स्वतंत्रता केंद्रीय लक्ष्य थी।

इतिहास में किसी व्यक्ति के एक निर्णय को उसके पूरे जीवन से अलग करके देखना कई बार भ्रामक परिणाम देता है। महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन प्रारंभ करना महत्वपूर्ण था, लेकिन चौरी–चौरा की हिंसक घटना के बाद उसी आंदोलन को वापस लेना भी उनका निर्णय था। इससे गांधीजी की ऐतिहासिक भूमिका समाप्त नहीं हो जाती।इसी प्रकार, अंडमान की सेल्युलर जेल में कठोर यातनाएँ सहने वाले क्रांतिकारियों की याचिकाओं का मूल्यांकन भी जेल की परिस्थितियों, उनकी रणनीति और आगे की राजनीतिक संभावनाओं के संदर्भ में होना चाहिए।

राष्ट्र के लिए मृत्यु स्वीकार करना बलिदान हो सकता है, लेकिन किसी बड़े उद्देश्य के लिए जीवित रहकर संघर्ष जारी रखना भी रणनीति हो सकती है।युद्ध और राष्ट्रीय आंदोलनों में लक्ष्य, साधन, परिस्थिति और रणनीति–चारों को एक साथ समझना आवश्यक है।इसी दृष्टि से चित्तौड़ के जौहर, हल्दीघाटी के युद्ध, भगत सिंह की फाँसी, सावरकर की कालापानी की सजा, श्रीअरविन्द के पांडिचेरी प्रवास, चौरी–चौरा के बाद आंदोलन की वापसी, गांधी–अम्बेडकर पूना समझौता, द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय सैनिकों की भूमिका और भारत विभाजन से जुड़े निर्णयों को उनके ऐतिहासिक संदर्भों से काटकर नहीं समझा जाना चाहिए।

–सूर्यप्रताप सिंह राजावत,
अधिवक्ता, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर

राशिफल

पंडित अनिल शर्मा

सोमवार 7 सितम्बर, 2026

भाद्रपद मास, कृष्ण पक्ष, पंचमी तिथि, सोमवार, विक्रम संवत 2083, पुनर्वसु नक्षत्र सायं 6:14 तक, व्यतिपात योग प्रात: 6:41 तक, बव करण प्रात: 6:17 तक, चन्द्रमा आज दिन 12:39 से कर्क राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थिति: सूर्य–सिंह, चन्द्रमा–मिथुन, मंगल–मिथुन, बुध–सिंह, गुरू–कर्क, शुक्र–तुला, शनि–मीन, राहु–कुम्भ, केतु–सिंह।

आज कुमार योग सूर्योदय से सायं 5:05 तक है। सर्वार्थ सिद्धि योग 6:14 से सूर्योदय तक है। आज बुध कन्या राशि में दिन 1:34 पर प्रवेश करेगा। आज अजा एकादशी व्रत, व्यतिपात पुण्यं है।

श्रेष्ठ चौघड़िया: अमृत सूर्योदय से 7:45 तक, शुभ 9:19 से 10:52 तक, चर 1:58 से 3:31 तक, लाभ–अमृत 3:31 से सूर्यास्त तक।

राहुकाल: 7:30 से 9:00 तक, सूर्योदय 6:12, सूर्यास्त 6:37 पर

मेष
व्यावसायिक कार्यों से संबंधित यात्रा संभव है। नौकरीपेशा व्यक्तियों को अतिरिक्त जिम्मेदारी मिल सकती है। आर्थिक मामलों में संतुलन बना रहेगा।

वृष
व्यावसायिक कार्यों के लिए भागदौड़ रहेगी। घर–गृहस्थी के खर्चों में अनावश्यक वृद्धि हो सकती है। पारिवारिक कार्यों के कारण भागदौड़ रहेगी।

मिथुन
आर्थिक/वित्तीय मामलों के लिए दिन अच्छा रहेगा। आय में वृद्धि होगी। अटका हुआ धन प्राप्त होगा। व्यावसायिक कार्यों से संबंधित आर्थिक समस्या का समाधान हो सकता है।

कर्क
व्यावसायिक कार्यों में आ रही अड़चनें दूर होने लगेंगी। आवश्यक कार्य शीघ्रता/सुगमता से बनने लगेंगे। नवीन कार्यों में उचित सफलता मिलेगी।

सिंह
शुभ कार्यों के लिए यात्रा संभव है। नवीन कार्यों के संबंध में सकारात्मक आश्वासन प्राप्त होंगे। व्यावसायिक कार्यों से संबंधित यात्रा संभव है। आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी।

कन्या
चन्द्रमा अष्टम भाव में शुभ नहीं है। शुभ कार्यों में व्यवधान हो सकता है। आज आवश्यक कार्यों में विलम्ब हो सकता है। यात्रा में दुर्घटना का भय है।

तुला
परिवार में उत्सव जैसा माहौल रहेगा। परिवार में धार्मिक–मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। परिवार में आपसी सहयोग–समन्वय बना रहेगा। व्यावसायिक वार्ता सफल रहेगी।

वृश्चिक
विवादित मामलों से राहत मिल सकती है। अस्त–व्यस्त दिनचर्या में सुधार होगा। अनहोनी की आशंका से बना हुआ मन का भय दूर होगा। व्यावसायिक आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी।

धनु
परिजनों के व्यवहार के कारण दु:ख हो सकता है। आवश्यक कार्यों के संबंध में दुविधा बनी रहेगी। खान–पान के कारण स्वास्थ्य खराब हो सकता है।

मकर
घर–परिवार में चल रहे आपसी मतभेद दूर होने लगेंगे। विवादित मामलों से राहत मिल सकती है। परिवार में धार्मिक–मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। व्यावसायिक आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी।

कुंभ
व्यावसायिक कार्यों के संबंध में महत्वपूर्ण वार्ता हो सकती है और महत्वपूर्ण योजना बन सकती है। आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी। परिवार में मन को प्रसन्न करने वाले संदेश प्राप्त होंगे।

मीन
आर्थिक कारणों से अटके हुए कार्य बनने लगेंगे। अटका हुआ धन प्राप्त होगा। व्यावसायिक कार्यों में उचित सफलता मिलेगी। परिवार में मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।